GAP भाषा
A MULTILINGUAL JOURNAL OF RESEARCH
(ISSN – 2582-8770)
Globally peer-reviewed and open access journal.

सांख्य दर्शन एवं अरस्तू के कार्य-कारण का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. तमन्ना एम. चौहाण

सहायक प्राध्यापिका,
दर्शनशास्त्र विभाग,
श्री एम.पी. शाह आर्ट्स एण्ड सायन्स कॉलेज,
सुरेन्द्रनगर
मो. 7043379732
Email : tamanna.chauhan@mpsasc.edu.in

प्रस्तावना

भारतीय दर्शन के सभी संप्रदाय तत्त्वमीमांसीय विवेचन करते है जिससे जीव तत्त्व का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर के मोक्ष प्राप्त कर सके । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि तत्त्वमीमांसीय चिंतन में कारणता संबंधी विचारों की प्रमुख भूमिका होती है, क्योंकि कारणता संबंधी वैचारिक आधार पर ही तत्त्वमीमांसीय चिंतन निर्भर करता है ।

प्रायः सभी दार्शनिक कार्य-कारण का संबंध अनिवार्य मानते है । जिस प्रकार मूर्तिकार से ही घट उत्पन्न होता है, अग्नि से दाह उत्पन्न होता है, अन्यथा नही, इस प्रकार कारण और कार्य का संबंध अन्वय-व्यतिरेक से सिध्ध माना गया है । कारण से कार्य तथा कारण के अभाव में कार्य का अभाव भी स्वीकार किया गया है । कोई भी घटना अकारण या आकस्मिक नहीं होती । इसी सिध्धांत के आधार पर हम किसी कार्य का अवलोकन करके उसके कारण का अनुमान करते है । और सामान्यतः यही कार्य-कारण का अविनाभाव संबंध कहलाता है ।[1]

सांख्य दर्शन का कार्य-कारण सिध्धांत (सत्कार्यवाद)

कार्य-कारण में सबसे महत्वपूर्ण विवाद इस बात पर है कि कार्य का कारण से क्या संबंध है? क्या कार्य की सत्ता स्वोत्पत्ति के पूर्व कारण में विद्यमान रहती है या नहीं ? नैयायिको ने कार्य और कारण के बीच अन्यन्त भेद करने के कारण असतकार्यवाद का प्रतिपादन किया, जिसमें कार्य का उत्पत्ति के पूर्व कारण में उसके अभाव का समर्थन किया गया । जबकि असतकार्यवाद के विरोध में सांख्य दर्शन ने जिस सिध्धांत का प्रतिपादन किया वह 'सत्कार्यवाद' है । इस मत अनुसार कार्य का अपनी उत्पत्ति के पूर्व सत्ता का प्रतिपादन करते है ।[2]

सांख्य दर्शन सत्कार्यवाद में विश्वास करता है । सत्कार्यवाद कार्य-कारण नियम का एक रूप है । सत्कार्यवाद का शाब्दिक अर्थ है –

सत् – अस्तित्व (Existence)
कार्य – क्रिया (Effect)
वाद – सिध्धांत (Theory)

सत्कार्यवाद अनुसार कार्य अपनी उत्पत्ति के पूर्व कारण में अव्यक्त रूप से विद्यमान रहता है । कार्य कोई नवीन उत्पत्ति नहीं है बल्कि जो कारण में बीज रूप में था, अव्यक्त रूप में था, उसी का ही प्रकटीकरण है । यहां उत्पत्ति का आशय नवीन उत्पत्ति न होकर आविर्भाव है और विनाश का अर्थ सर्वथा विनाश न होकर तिरोभाव है । अव्यक्त की अभिव्यक्ति ही कार्य की उत्पत्ति है तथा व्यक्त का पुनःअव्यक्त होना ही विनाश है । सांख्य मत अनुसार कारण और कार्य में केवल अवस्था का अन्तर है, कोई तात्त्विक अन्तर नही है । कारण 'अव्यक्त कार्य' है, जब कि कार्य 'व्यक्त कारण' है ।[3]

सत्कार्यवाद के रूप

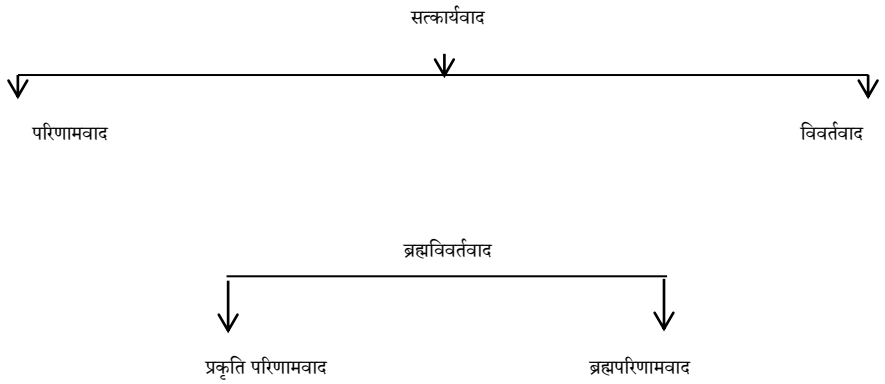

सत्कार्यवाद के संदर्भ में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि क्या कार्य कारण का वास्तविक रुपान्तरण है ? सांख्य-योग एवं विशिष्टाद्वैत वेदांत इस प्रश्न का भावात्मक उत्तर देते है जब कि अद्वैत वेदांत के प्रवर्तक आचार्य शंकर इस प्रश्न का निषेधात्मक उत्तर देते है ।

सत्कार्यवाद के दो रूप है –

(1) परिणामवाद
(2) विवर्तवाद

https://www.gapbhasha.org/

GAP भाषा
A MULTILINGUAL JOURNAL OF RESEARCH
(ISSN – 2582-8770)
Globally peer-reviewed and open access journal.

(1) **परिणामवाद**

इसके अनुसार जब कारण से कार्य की उत्पत्ति होती है तो कारण का कार्य में वास्तविक रुपांतर हो जाता है। सांख्य, योग और रामानुज 'परिणामवाद' को मानते है। सांख्य का मत 'प्रकृति परिणामवाद' कहलाता है तथा रामानुज का मत 'ब्रह्मपरिणामवाद' कहलाता है। कार्य को कारण का वास्तविक रूपान्तरण मानने के कारण यहाँ कारण और कार्य दोनो सत् है।

(2) **विवर्तवाद**

इसके अनुसार कारण का कार्य में वास्तविक रुपान्तरण नही होता बल्कि आभास मात्र होता है। अद्वैत वेदांत में इसका समर्थन है। इसके अनुसार कार्य कारण का विवर्त है। शंकर के अनुसार ब्रह्म ही एक मात्र सत् है। यह अपरिवर्तनशील है। अतः ब्रह्म का जगत् के रुप में वास्तविक रुपान्तरण संभव नही है। जगत् ब्रह्म का विवर्त या मिथ्या प्रतीत है। इसीलिए यह कार्य जगत् पारमार्थिक रुप से मिथ्या है।

शंकर अनुसार यदि कारण में वास्तविक रुपान्तरण की बात को स्वीकार किया जाए तो फिर ऐसा मानना सत्कार्यवाद के विपरीत होगा। सत्कार्यवाद नवीन उत्पत्ति की अवधारणा का विरोध करता है। जब कि कारम में वास्तवित रुपान्तरण मानने पर हमें कार्य में कुछ न कुछ नवीन उत्पत्ति अवश्य माननी पडेगी।

पुनः ब्रह्म में वास्तविक रुपान्तरण की बात करने पर ब्रह्म विकारी एवं परिवर्तनशील हो जायेगा। ऐसी स्थिति में जगत को ब्रह्म के अंश का वास्तविक रुपान्तरण नहीं माना जा सकता।[4]

सत्कार्यवाद की सिध्धि का तर्क

सांख्य दर्शन सत्कार्यवाद को मानता है तथा उसके मत का नाम 'प्रकृति-परिणामवाद' है। सृष्टि के सारे तत्त्व प्रलयावस्था में बीज रूप से या अव्यक्त रुप से प्रकृति के अंतर्गत विद्यमान रहते है तथा सर्गावस्था में कार्य रूप से व्यक्त होते है। कार्य नई सृष्टि नहीं है, वह कारण की कार्य रूप में अभिव्यक्ति है। ईश्वरकृष्णने सांख्यकारिका में सत्कार्यवाद की सिध्धि के लिए निम्नलिखित पाँच तर्क दिए है –

"असद्करणात् उपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाऽभावात्।
शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावच्च सत्कार्यम्।"

(1) असद्करणात्

यदि कार्य उत्पन्न होने से पूर्व कारण में विद्यमान न हो तो वह अपने कारण से उत्पन्न नहीं हो सकता। जैसे के यदि तिल में तेल नहीं होता तो उसे लाखों प्रयत्न करने पर भी नहीं निकाला जा सकता।

(2) उपादानग्रहणात

कार्य की प्राप्ति के लिए हम उपादान कारण (सामग्री) को ग्रहण करते है अर्थात् किसी निश्चित कार्य की प्राप्ति के लिए कोई निश्चित सामग्री ही ग्रहण करते है, क्योंकि उपादान कारण में कार्य पहले से ही अस्तित्ववान होता है।

(3) सर्वस्मभावाभावात्

यदि कार्य उत्पत्ति से पूर्व अपने कारण में अस्तित्वमान नहीं होता तो किसी भी कारण से कोई भी कार्य उत्पन्न हो जाता, किन्तु ऐसा नही होता, बल्कि कारण से वही कार्य उत्पन्न होता है, जो उसमें अस्तित्ववान होता है।

(4) शक्तस्य शक्यकरणात्

कारण में कार्य उत्पन्न करने की शक्ति होती है। यह शक्ति इसी रुप में होती है कि कार्य कारण में पहले से ही अस्तित्ववान होता है।

(5) कारणभावाच्च

कारण और कार्य में कोई भेद नहीं है, क्योंकि कारण और कार्य दो भिन्न पदार्थ नहीं है, कारण ही विभाजित होकर कार्य के रुप में प्रकट हो जाता है।

सांख्य दर्शन में सत्कार्यवाद के आधार पर प्रकृति की सत्ता सिध्ध की गई है और उसे प्रधान कारण के रुप में स्थापित किया गया है। विकासवाद का सिध्धांत भी सत्कार्यवाद पर आधारित है। यहाँ विकास का तात्पर्य नवीन सृष्टि नहीं है, अपितु प्रकृति में विद्यमान अव्यक्त तत्त्वों का ही प्रकटीकरण है।[5]

अरस्तू का कार्य-कारण सिध्धांत

अरस्तू के दर्शन में उसका कार्य-कारण सिध्धांत का अत्यधिक महत्वपूर्ण स्थान है, जिसका मूल संबंध तत्त्वमीमांसा से है। इस सिध्धांत के माध्यम से अरस्तू ने विश्व की व्यापक दार्शनिक व्याख्या करने का प्रयास किया है। अरस्तू जगत् की प्रत्येक घटना या वस्तु की उत्पत्ति के मूल में चार कारणों को स्वीकार करते है, क्योंकि इनके मत अनुसार कोई भी घटना या वस्तु निम्न कारणों का परिणाम है।

(1) उपादान कारण

किसी वस्तु का निर्माण किसी द्रव्य या उपादान से होता है। वह उपादान या द्रव्य ही वस्तु का कारण है। इसका तात्पर्य उस सामग्री से है जो आकार ग्रहण करती है।

उदाहरणार्थ – घडे के निर्माण में मिट्टी 'उपादान कारण' है।

(2) निमित्त कारण

यह कार्य का शक्ति कारण है। किसी कार्य की उत्पत्ति के लिए शक्ति की आवश्यकता है। यह गति या परिवर्तन का कारण है। इसीलिए इसे 'चालक शक्ति' भी कहते है। इसका तात्पर्य उन क्रियाओं, साधनो और कर्ता से है जो सामग्री को आकार प्रदान करता है।

उदाहरणार्थ – कुम्भकार तथा उसकी क्रियाएँ और उपकरण आदि घडे का 'निमित्त कारण' है।

(3) आकारिक कारण या स्वरूप कारण

इस कारण से अरस्तू का तात्पर्य उस प्रतिमान से है जो कर्ता के मन में है तथा जिसके अनुरुप वह वस्तु का निर्माण कर रहा है।

उदाहरणार्थ – कुम्भकार के मन में जो घडे का प्रतिमान है, यह घडे का 'आकारिक कारण' है।

(4) अन्तिम कारण या लक्ष्य कारण

इस कारण से अरस्तू का तात्पर्य उस लक्ष्य से है जिसकी प्राप्ति के लिए कर्ता द्वारा कार्य किया जा रहा है।

उदाहरणार्थ – घडे के प्रतिमान को मूर्त रुप प्रदान करना ही 'अन्तिम कारण' है।

अरस्तू ने इन चार कारणों को संयुक्त रूप से किसी कार्य के संपादन के लिए अनिवार्य और पर्याप्त माना है। अरस्तू ने इनमें से तीन कारणों – निमित्त कारण, आकारिक कारण और प्रयोजनमूलक कारण का अन्तर्भाव आकार में कर लिया है। वास्तव में ये तीनों कारण आकार के ही भिन्न-भिन्न रूप है। आकारिक कारण किसी वस्तु का सार तत्त्व है। प्रयोजनमूलक कारण उस वस्तु के सम्प्रत्यय का यथार्थ रूप में रुपान्तरण है। इसी प्रकार निमित्त कारण वह शक्ति है, जो परिवर्तन या गति का प्रवर्तन करता है। बिना निमित्त कारण के

https://www.gapbhasha.org/

परिवर्तन सम्भव नहीं है।[6]

सांख्य एवं अरस्तू के कार्य-कारण की तुलना

सांख्य एवं अरस्तू के कार्य-कारण की तुलना निम्नवत है –

कार्य-कारण भाव अरस्तू के दर्शन का एक महत्वपूर्ण सिध्धांत है, जिसके माध्यम से उसने जगत की व्यापक दार्शनिक व्याख्या करने का प्रयास किया है। यहाँ कार्य-कारण भाव एक मौलिक एवं व्यापक अवधारणा है। सांख्य दर्शन का कार्य-कारण सिध्धांत 'सत्कार्यवाद' कहलाता है, जब कि अरस्तू की मान्यता है कि जगत की प्रत्येक वस्तु अपनी उत्पत्ति से पूर्व द्रव्य में विद्यमान थी। अरस्तू ने जगत् की प्रत्येक वस्तु की उत्पत्ति के चार कारण बताये है – 1) उपादान कारण 2) निमित्त कारण 3) आकारिक कारण और 4) लक्ष्य कारण (अन्तिम कारण)[7]

अरस्तू की मान्यता है कि आकारिक कारण में ही निमित्त कारण और अन्तिम कारण समाहित है, क्योंकि प्रतिमान (मोडल) के अनुरूप ही हम क्रियाओं और साधनों को अपनाते हैं तथा इस प्रतिमान (मोडल) का ही मूर्त रूप में प्रकटीकरण करना हमारा लक्ष्य होता है। इसी कारण अरस्तू ने आगे चलकर कहा कि किसी भी वस्तु और घटना की उत्पत्ति के मूल में वास्तव में दो ही कारण होते है –

(1) उपादान कारण

(2) आकारिक कारण

अरस्तू ने जगत की समस्त वस्तुओं और घटनाओं को मूल में उपादान तथा आकारिक कारण को स्वीकार किया और इन्हें क्रमशः द्रव्य और आकार की संज्ञा दी। अरस्तू ने द्रव्य को अनिश्चित तत्त्व की संज्ञा दी तथा बताया कि द्रव्य में आकार ग्रहण करने तथा वस्तु के रुप में प्रकट होने की सम्भाव्यता होती है। जो भी वस्तुएँ उत्पन्न होती है, वे अपनी उत्पत्ति के पूर्व द्रव्य में ही विद्यमान रहती है। जहां सांख्य दर्शन 'प्रकृति' को जगत की समस्त वस्तुओं का आदि कारण मानते है। वह जगत की समस्त वस्तुओं को उनकी उत्पत्ति से पूर्व प्रकृति में ही 'अव्यक्त' रूप में विद्यमान मानते है, वही अरस्तू के समान आकारिक कारण को स्वीकार नहीं करते है। सांख्य दर्शन के मत अनुसार किसी कारण से कार्य इसिलए उत्पन्न होता है, क्योंकि उसमें कार्य को उत्पन्न करने की शक्ति होती है।

किसी निश्चित कार्य के लिए किसी निश्चित उपादान कारण की ही आवश्यकता होती है। जैसे की तेल निकालने के लिए सामग्री रुप में तिल की ही आवश्यकता है। सांख्य दर्शन मानते हैं कि कारण और कार्य में कोई भेद नहीं होता, क्योंकि कारण ही विभाजित होकर कार्य के रुप में प्रकट हो जाता है, जब कि अरस्तू ने कारण और कार्य में भेद करते है और बताते है कि किसी समय में जिसे कार्य की संज्ञा दी गई थी, हो सकता है कि वह किसी अन्य कार्य की उत्पत्ति के सन्दर्भ में कारण का रूप धारण कर ले। सांख्य दर्शन भी अरस्तू के समान यह स्वीकार करते है कि कार्य किसी अन्य घटना के सन्दर्भ में कारणता का रूप धारण करके किसी अन्य कार्य को उत्पन्न कर सकता है।[8]

निष्कर्ष

अरस्तू ने जगत की प्रत्येक वस्तुओं और घटनाओं में आदि कारण के रुप में 'द्रव्य और आकार' को स्वीकार करते है, वहीं सांख्य दर्शन एक मात्र 'प्रकृति' को समस्त जगत के आदि कारण तथा स्वयं-भू कारण के रुप में स्वीकार करते है। किन्तु दोनों ही इस मत पर सहमत दिखाई देते हैं कि द्रव्य तथा प्रकृति से अपने आप कोई भी घटना या वस्तु उत्पन्न नहीं हो सकती। इस संदर्भ में अरस्तू ने कहा है की द्रव्य में विद्यमान सम्भाव्यता तब तक वस्तु के रुप में प्रकट नही हो सकती, जब तक कि आकार उसे गतिशील न करे। इसी प्रकार सांख्यदर्शन की मान्यता है कि प्रकृति से सृष्टि तब तक नहीं हो सकती, जब तक कि पुरुष उससे संयुक्त न हो। अतः उपरोक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि अरस्तू और सांख्य दर्शन के कार्य-कारण भाव में यदि कुछ बातों को लेकर समानता है तो कुछ बातों को लेकर असमानता भी दिखाई देती है।

सन्दर्भसूचि

[1] उपाध्याय विद्यासागर (2001) दर्शनशास्त्र का समग्र अवलोकन, इलाहाबाद: इलाहाबाद : युथ कोम्पिटिशन टाइम्स, प्रथम संस्करण, पृ.18
[2] रावण सी. वी. (2006) भारतीय दर्शन (षट्दर्शन), अहमदाबाद : क्रिष्ना प्रिन्टरी, तृतीय संस्करण, पृ.153
[3] शाह नगीन जी. (1995) सांख्य-योग (षट्दर्शन) अहमदाबाद : युनिवर्सिटी ग्रंथ निर्माण बोर्ड, द्वितीय संस्करण, पृ.38
[4] रावण सी. वी. (2006) भारतीय दर्शन (षट्दर्शन), अहमदाबाद : क्रिष्ना प्रिन्टरी, तृतीय संस्करण, पृ.155
[5] सिंह करनैल (2018) दर्शनशास्त्र (नेट / जे आर एफ), मेरठ : अरिहंत प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृ.91
[6] जाटव डी. आर. (2003) पाश्चात्य दर्शन का समीक्षात्मक विश्लेषण, जयपुर : मलिक एण्ड कम्पनी, प्रथम संस्करण, पृ.93
[7] कुमार रोहित एण्ड अन्य (2009) दर्शनशास्त्र (नेट / जे आर एफ), मेरठ : अरिहंत प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृ.74
[8] कुमार रोहित एण्ड अन्य (2009) दर्शनशास्त्र (नेट / जे आर एफ), मेरठ : अरिहंत प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृ.74

https://www.gapbhasha.org/